



महावीर : जीवन और मुक्ति के सूत्रकार

प्रो. जयकुमार 'जलज'

महावीर में और बहुत से दूसरे महापुरुषों में एक मौलिक अन्तर है। महावीर की यात्रा विचार से आरम्भ होती है, जबकि बहुत से महापुरुषों की यात्रा का आरम्भ दयाभाव से होता है। जैन धर्म के बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ के साथ तो अवश्य यह हुआ कि वे बंधे हुए पशुओं को देखकर द्रवित हो गये और उन्होंने संन्यास ले लिया। लेकिन महावीर के साथ ऐसी कोई घटना घटित नहीं हुई। वे चिन्तन के माध्यम से संन्यास तक पहुँचे। इसलिये महावीर हमारे भीतर किसी दयाभाव या गलदशु भावुकता को नहीं जगाते, वे हमारे चिन्तन को प्रेरित करते हैं। हमारे प्रश्नों का उत्तर देते हैं और हमारी जिज्ञासाओं को शान्त करते हैं। वे हमें कायल करते हैं और हमें उनके साथ सहमत होना पड़ता है।

महावीर की यात्रा विचार से आरम्भ होने के कारण वे एक ऐसे दर्शन को उपलब्ध कर सके जिसमें कहीं कोई छेद नहीं है और जो जीर्ण हीना जानता ही नहीं है। पच्चीसवीं शताब्दी ही नहीं, पचासवीं या सौवीं शताब्दी भी उसे ओढ़ सकती है। वह ओछा पड़ने वाला नहीं है। इतिहास में ऐसा एक ही उदाहरण और है जहाँ चिन्तन के माध्यम से एक सर्वव्यापी दर्शन तक पहुँचा गया है। यह उदाहरण है कार्लमार्क्स का, लेकिन मार्क्स के समय तक बहुत सा ज्ञान प्रकाश में आ चुका था। मार्क्स के सामने पुस्तकालय खुले हुए थे। उन्होंने अपनी यात्रा वस्तुतः अध्ययन से आरम्भ की। महावीर के काल में इतना कुछ था ही नहीं। इसलिये उन्हें स्वयं की चिन्तनशक्ति पर ही निर्भर रहना पड़ा। उनके पास जो कुछ भी है वह उनका स्वयं का अर्जित किया हुआ है। उनके पहले के तेईस तीर्थंकरों की तपस्याओं के विवरण, उनके अहिंसा धर्म पर अडिग रहने के उल्लेख तो मिलते हैं लेकिन धर्म या आचरण

के पीछे की दार्शनिक पीठिका को पहचानने और उसे स्पष्ट करने के उनके प्रयत्नों का उल्लेख नहीं मिलता। महावीर ने सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह आदि के एक भले आचरण को दर्शन की कायल कर देने वाली भूमि पर खड़ा किया। उन्होंने ऐसा न किया होता तो जैन धर्म एक आचार धर्म बनकर रह जाता। उसका भी यही हाल हुआ होता जो बहुत से विचारहीन आचारों का होता है। वह काल के किसी भी झोंके में उखड़ गया होता।

ईसा से ५९९ वर्ष पूर्व महावीर का जन्म हुआ। उनके पिता सिद्धार्थ वैशाली के कुण्डग्राम में ज्ञातृ शाखा के गणराजा थे और माँ विदेह की राजकुमारी त्रिशला गणराज्य के महामान्य राष्ट्राध्यक्ष चेटक की बहिन (दिगम्बर पुराणों के अनुसार पुत्री) थी। इन्हीं चेटक की दूसरी बहिन चेल्लना मगध के राजा बिम्बिसार को ब्याही थी। महावीर के जन्म के पूर्व उनकी माँ महारानी त्रिशला को स्वप्न में सोलह दृश्य दिखायी दिये—गजराज, वृषभ, सिंह, स्नान करती हुई लक्ष्मी, फूलों की माला, चन्द्रमा, सूर्य, आदि। राज्य ज्योतिषी ने इन स्वप्नों का विचार किया और घोषणा की कि महाराज सिद्धार्थ के यहाँ जो पुत्र उत्पन्न होगा वह अमरता को प्राप्त करेगा और उसकी साधना से समूचे विश्व में कल्याण का अवतरण होगा।

ईसा से ५९९ वर्ष पूर्व, ग्रीष्म ऋतु, चैत्र मास, शुक्ल पक्ष त्रयोदशी तिथि, मध्यरात्रि-यह समय है महावीर के जन्म का। पुत्र के गर्भ में आने के समय से ही पिता राजा सिद्धार्थ के राज्य में धन-धान्य की अपार वृद्धि होने लगी थी। इसलिये उन्होंने पुत्र का नाम रखा वर्द्धमान। बचपन में अनेकानेक वीरतापूर्ण कार्यों के कारण वर्द्धमान को महावीर की संज्ञा प्राप्त हुई। धैर्य, गाम्भीर्य, स्थैर्य, ध्यान, चिन्तन और समझ महावीर में जन्मजात गुण प्रतीत होते हैं। लगता है, जैसे उन्हें जीवन में कोई

हड़बड़ी नहीं है। उनका जीवन भागता हुआ है ही नहीं। ठहरकर सोचता हुआ, शान्त, तटस्थ, चीजों को समझने के लिए प्रस्तुत होता हुआ, ग्रहण करने की भावुक उतावली भी नहीं और छूट जाने का बोझिल पश्चात्ताप भी नहीं, समय की रेत पर विश्वास के पांवों से चलता हुआ जीवन—यह चित्र उभरता है महावीर का। इसलिये महावीर के जीवन में कोई नाटकीयता-कोई तमाशा नहीं है। एक मैदानी नदी की तरह शान्त बहाव है उनका। सन्यास के लिये निकलना चाहते थे। पर माता-पिता की सहमति के लिये प्रतीक्षा करते रहे। जब वे २७ वर्ष के थे उनके माता-पिता का देहान्त हो गया। अब वे सन्यास के लिए अपेक्षाकृत स्वतन्त्र हो गए। भाई से अनुमति माँगी। भाई ने अनुमति देने में संकोच दिखाया तो दो वर्ष और ठहरे रहे। तीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने सन्यास ग्रहण कर लिया। श्वेताम्बर मान्यता है कि वे विवाहित थे। दिगम्बर मान्यता है कि उन्होंने विवाह नहीं किया था। लगभग साढ़े बारह वर्ष तक वे मौन तपस्या करते रहे। रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श के सारे आकर्षणों से विरत रहते हुए वे चिन्तन में लीन बने रहे। प्रायः लोगों ने उन्हें गलत समझा और कष्ट पहुंचाये। पर वह व्यक्ति कष्टों की चिन्ता कहीं करता है जिसके सामने सत्य अपने आपको अनावृत कर रहा हो। उनका परिश्रम सफल हुआ और उन्हें सब कुछ स्पष्ट हो गया। जैन ग्रन्थ कहते हैं—महावीर सर्वज्ञ हो गये। यह घटना ५५७ ई. पू. २६ अप्रैल, वैशाख शुक्ल दशमी को बिहार प्रान्त के जूम्भक नामक गांव के बाहर ऋजुकुला नदी के तट पर एक शाल वृक्ष के नीचे घटित हुई। इस घटना के बाद उन्हें सर्वज्ञ, तीर्थंकर, गणनायक, अर्हंत परमात्मा, जिनेन्द्र आदि नामों से स्मरण किया जाने लगा। महावीर ने अपना उपदेश पण्डितों की भाषा संस्कृत में न देकर सर्वसाधारण की भाषा अर्द्धमागधी प्राकृत में दिया। अर्द्धमागधी प्राकृत (वर्तमान पूर्वी हिन्दी, यानी अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी की पूर्वज भाषा) के पूर्व में मागधी (वर्तमान बिहारी, बंगाली, असमी और उडिया की पूर्व भाषा) और पश्चिम में शौरसेनी प्राकृत (वर्तमान पश्चिम हिन्दी, यानी खड़ी बोली, ब्रज, बुन्देली, कन्नौजी और बांगरू की पूर्वज भाषा) का प्रदेश था। महावीर की मातृभाषा मागधी प्राकृत थी; लेकिन अर्द्धमागधी प्राकृत में उपदेश देने के कारण अर्द्धमागधी भाषा-भाषियों के अतिरिक्त शौरसेनी और मागधी भाषा-भाषी भी महावीर को समझ सके। क्योंकि अर्द्धमागधी मध्यवर्ती प्रदेश की भाषा थी और उसमें पश्चिमी तथा पूर्वी छोरों पर बोली जाने वाली शौरसेनी तथा मागधी की बहुत सी विशेषताएँ विद्यमान थीं। एक ओर जहाँ वह शौरसेनी से बहुत दूर नहीं थी वहीं दूसरी ओर मागधी से भी बहुत दूर नहीं थी। उनकी सभा में जिसे समवसरण कहा जाता था, सभी धर्म, विचार और उन्न के मनुष्यों को ही नहीं, पशु-पक्षियों को भी आने की छूट थी। वे निरन्तर भ्रमण करते रहे और सभी को उस सत्य से परिचित कराते रहे जिसे उन्होंने लम्बी कष्टपूर्ण मौन साधना के द्वारा प्राप्त किया था।

उनके उपदेशों को दूर-दूर तक पहुँचाने के लिए इन्द्रभूति गौतम आदि ग्यारह प्रमुख शिष्यों के नेतृत्व में मुनियों के गणों का संगठन हुआ। महासती चन्दना उनके साध्वीसंघ की अध्यक्षता बनी। महावीर ने मुनि और गृहस्थ दोनों को मार्गदर्शन दिया। २९ वर्ष ३ माह और २४ दिन तक वे उपदेश देते रहे। अन्त में ५२७ ई. पूर्व कार्तिक कृष्ण अमावस्या मंगलवार १५ अक्टूबर को पावानगर में उनका निर्वाण हुआ।

साढ़े बारह वर्ष के मौन लेकिन जागरूक एकाग्र चिन्तन से कौन सी सर्वज्ञता मिली महावीर को? क्या वे संसार की सभी छोटी-बड़ी बातों को जान गये? महावीर की सर्वज्ञता इन सब ही चीजों में नहीं है। वास्तव में उनकी चेतना का पदार्थ (वस्तु) द्रव्य या सत् की विराटता से साक्षात्कार हो गया। उन्हें पदार्थ की स्वतन्त्रता की अनुभूति हुई। वे समझ सके कि पदार्थ स्वतन्त्र, विराट और बहुआयामी है। इस अभूतपूर्व घटना की असाधारणता एक ऐसी बात से समझी जा सकती है कि इसे समझने के लिए विज्ञान को लगभग २५०० वर्ष और प्रतीक्षा करनी पड़ी। बीसवीं शताब्दी में आईस्टीन के माध्यम से ही वह इसे समझ सका। इसे समझने के लिए राजनीतिशास्त्र को लगभग २२३६ वर्ष और प्रतीक्षा करनी पड़ी। फ्रान्सीसी क्रान्ति के माध्यम से ही वह इसे समझ पाया। आईस्टीन ने इसे मूलतः केवल जड़ पदार्थों के सन्दर्भ में और फ्रान्सीसी क्रान्ति में इसे केवल मानवी सन्दर्भों में ही समझा। महावीर ने इसका सम्पूर्ण जड़ और चेतन के सन्दर्भ में आत्म-साक्षात्कार किया। इस आत्म-साक्षात्कार ने उन्हें दृष्टि दी जिससे वे अनेकान्त, स्याद्वाद, अहिंसा, अपरिग्रह आदि सत्यों को देख सके, मानव आचरण के मानकों का निर्धारण कर सके और जीवों की मुक्ति का रास्ता पा सके।

महावीर की सर्वज्ञता का अर्थ उनके द्वारा सब कुछ जानना नहीं है। बल्कि उसे जानना है जिसे जान लेने के बाद और कुछ जानना शेष नहीं रह जाता। वस्तु के स्वरूप की जानकारी के बाद महावीर के लिए ज्ञान निःशेष हो गया। यह जड़ को सीचना है जिसे सीचने के बाद फूल-फलों या शाखाओं का सीचना आवश्यक नहीं रह जाता। महावीर इसी अर्थ में सर्वज्ञ हैं। वास्तव में वे दृष्टि-सम्पन्न हो गये। दृष्टि-सम्पन्न व्यक्ति सभी ओर देख सकता है। महावीर के लिए सब ओर देखना सम्भव हो गया। आधुनिक काल में सर्वज्ञता की कुछ ऐसी ही झलक हमें महात्मा गांधी में देखने को मिलती है। वे साहित्य-समीक्षक नहीं थे पर रामचरित मानस, साकेत आदि पर टिप्पणी कर गये, अर्थशास्त्री नहीं थे पर उन्होंने ग्रामोद्योग, कृषि, स्वदेशी आदि की नई दिशाओं से संसार को परिचित कराया, दार्शनिक नहीं थे पर गीता की उनकी अपनी व्याख्या है, समाजशास्त्री नहीं थे पर स्त्री-कल्याण, हरिजन-उद्धार आदि पर उन्होंने निजी योजनाएँ प्रस्तुत की, शिक्षाशास्त्री नहीं थे लेकिन मातृभाषा, शिक्षा-प्रणाली आदि पर उनके विचार शिक्षाशास्त्रियों के लिए चुनौती बन गये। महावीर की सर्वज्ञता इससे अधिक तात्त्विक और इससे अधिक गहरी थी।

वस्तुस्वरूप की विराटता का निरूपण करने के लिए महावीर ने उसकी अनेक विशेषताओं को स्पष्ट किया—

१. वस्तु में अनेक गुण हैं। जैसे चेतन वस्तु में ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि और पुद्गल वस्तु में रूप, रस, गन्ध स्पर्श आदि।
२. वह अनन्तधर्मा है। संसार में अनन्त वस्तुओं की विद्यमानता के कारण प्रत्येक वस्तु की अनन्त सापेक्षताएं हैं। एक अपेक्षा से वस्तु कुछ है, दूसरी अपेक्षा से कुछ और। इस प्रकार उसके अनेक अन्त या धर्म हैं। एक ही व्यक्ति पिता की अपेक्षा से पुत्र, पुत्र की अपेक्षा से पिता, बहिन की अपेक्षा से भाई, पत्नी की अपेक्षा से पति, भानजे की अपेक्षा से मामा और पता नहीं क्या-क्या होता है। महावीर को वस्तु के इस अनेकान्त स्वरूप का बहुत गहरा बोध है। इसे इतना आधारभूत माना गया कि परवर्ती कालों में महावीर के सम्पूर्ण चिन्तन और दर्शन को अनेकान्त-वाद के नाम से ही अभिहित किया गया।
३. वस्तु उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त है। प्रतिक्षण उसमें कुछ नया जुड़ता है, प्रतिक्षण उसमें से कुछ घट जाता है, फिर भी कुछ है जो प्रतिक्षण स्थिर रहता है। नदी के किनारे खड़े हुए हमारे सम्भ्रमण वही नदी नहीं होती। कुछ पानी नया आ जाता है, कुछ पुराना बहकर आगे निकल जाता है और इस प्रकार हर क्षण एक नई नदी होती है फिर भी नदी वही होती है—उसकी संज्ञा भी वही बनी रहती है। इस निबन्ध को आरम्भ करते समय निबन्धकार जो व्यक्ति था निबन्ध की समाप्ति तक वह वही रहने वाला नहीं। बल्कि एक-एक पंक्ति के साथ—एक-एक शब्द के साथ वह बदलता गया है। फिर भी निबन्ध की समाप्ति पर यह निबन्ध उसी का है जिसने इसे आरम्भ किया था।
४. वस्तु स्वतन्त्र है। वह अपने परिणामी स्वभाव के अनुसार स्वतः परिवर्तित होती है।

इस प्रकार वस्तु अनेक गुण, अनन्त धर्म, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त और स्वतन्त्र है। वस्तु स्वरूप का यह सम्यक् बोध महावीर के चिन्तन की बुनियाद है। सभी वस्तुएं चाहे वे जड़ हों या चेतन, इतनी विराट हैं कि हम उन्हें उनकी सम्पूर्णता में युगपत् देख ही नहीं सकते। आईसवर्ग पानी की सतह पर जितना दिखता है, उससे कहीं अधिक बड़ा होता है—उसका अधिकांश सतह के नीचे होता है और दिखाई नहीं देता है। दिखाई देने वाले आकार के आधार पर उसे टक्कर मारने वाला जहाज उससे टकराकर खण्ड-खण्ड हो सकता है। यही हाल सभी वस्तुओं का है, वे आईसवर्ग की तरह ही होती हैं। एक समय में हम वस्तु के एक ही पहलू को देख रहे होते हैं। हम खण्ड को देखते हैं। खण्ड को देखना समग्र की चेतना नहीं है। एक ऐसे

युग में जिसमें मनुष्य-मनुष्य के बीच भी समानता की बात सोचना सम्भव नहीं था। महावीर ने सभी पदार्थों को समान रूप से विराट और स्वतंत्र घोषित किया। उन्होंने अपनी घोषणा को कार्य रूप में परिणत किया। उनके चतुर्विध संघ में सभी वर्णों के लोग समान भाव से सम्मिलित हुए और सभी ने समान भाव से जीवन को लिया।

वस्तु को हम जितना भी देख और जान पाते हैं उसका वर्णन उससे भी कम कर पाते हैं। हमारी भाषा हमारी दृष्टि की तुलना में और भी असमर्थ है। वह पदार्थों को अपूर्ण और अयथार्थ रूप में लक्षित करती है। नाना धर्मात्मक वस्तु की विराट सत्ता के समक्ष हमारी दृष्टि को सूचित करने वाली भाषा बहुत बौनी है। वह एक टूटी नाव के सहारे समुद्र के किनारे खड़े होने की स्थिति है। वस्तु की तुलना में भाषा की इस असमर्थता को स्वीकार करना ही स्याद्वाद तक पहुंचना है। इसलिये स्याद्वाद अनेकान्त का ही भाषिक प्रतिनिधि है। विचार में जो अनेकान्त हैं। वाणी में यही स्याद्वाद है। इस प्रकार भाषा और अभिव्यक्ति की एक निर्दोष पद्धति के रूप में उसकी महत्ता है।

स्यात् शब्द शायद के अर्थ में नहीं है। स्यात् का अर्थ शायद हो तब तो वस्तु के स्वरूप कथन में सुनिश्चितता नहीं रही। शायद ऐसा है, शायद वैसा है—यह तो बगले झाँकना हुआ। पालि और प्राकृत में स्यात् शब्द का ध्वनिविकास से प्राप्त रूप 'सिया' वस्तु के सुनिश्चित भेदों के साथ प्रयोग में आया है। किसी वस्तु के धर्मकथन के समय स्यात् शब्द का प्रयोग यह सूचित करता है कि यह धर्म निश्चय ही ऐसा है लेकिन अन्य सापेक्षताओं में सुनिश्चित रूप से सम्बन्धित वस्तु के अन्य धर्म भी हैं। इन धर्मों को कहा नहीं जा रहा है क्योंकि शब्द सभी धर्मों को युगपत् संकेतित नहीं कर सकते यानी स्यात् शब्द केवल इस बात का सूचक है कि कहने के बाद भी बहुत कुछ अनकहा रह गया है। इस प्रकार वह सम्भावना, अनिश्चय, भ्रम आदि का द्योतक नहीं, सुनिश्चितता और सत्य का प्रतीक है। वह अनेकान्त-चिन्तन का वाहक है। यही अनेकान्त-चिन्तन आचार के क्षेत्र में अपरिग्रह के रूप में प्रकट हुआ। इस प्रकार अनेकान्त महावीर के उपदेशों की आधार शिला है। चिन्तन, वाणी, आचार और समाज व्यवस्था सभी जगह उसका उपयोग है। लेकिन महावीर ने उसे हवा में से ग्रहण नहीं किया। उनके द्वारा वस्तु स्वरूप को वैज्ञानिक ढंग से समझ लेने का एक सहज परिणाम है वह।

वस्तु-स्वरूप की उक्त जानकारी के फलस्वरूप ही महावीर उपादान और निमित्त की परिकल्पना तक पहुँचे। वस्तु स्वयम अपने विकास या ह्रास का मूल कारण और आधारभूत सामग्री है—वह उपादान है। अन्य वस्तु उसकी सहायक मात्र है, वह उसके लिये निमित्त भर बन सकती है। इस प्रकार वस्तु अपने विकास या ह्रास के लिए स्वयं उत्तरदायी है। एक वस्तु दूसरी वस्तु के विकास या ह्रास के लिए उपादान नहीं बन सकती। सबकों अपने पाँवों स्वयं चलना है। कोई किसी के लिए चल नहीं सकता

किसी पुजारी को नियुक्त करके हम प्रसन्न नहीं हो सकते कि हम पूजा कर रहे हैं। हम केवल वेतन दे रहे होते हैं। पूजा करना है तो स्वयं करनी होगी। धनी से धनी बाप का बेटा भी पिता से यह नहीं कह सकता कि परीक्षाएं सिर पर हैं, पाठ्यक्रम की चिन्ता है, चार छः नौकर लगा दीजिए जो मेरे लिए पाठ्यक्रम पूरा कर लें।

जब सभी पदार्थ स्वतंत्र हैं तब एक के द्वारा दूसरे के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप करना गलत लगता है। हस्तक्षेपकर्ता ऐसा तभी करता है जब वह दूसरे की विराटता को अनदेखा करता है। हस्तक्षेप करना और हस्तक्षेप सहना दोनों ही हानिकारक हैं। इससे कठिनाइयाँ और संघर्ष खड़े होते हैं। आत्मा के चारों ओर आस्रव एकत्र होता है और मुक्ति से दूरी बढ़ जाती है। जब हम हस्तक्षेप करते हैं तब दूसरे के लिए उपादान बनने की चेष्टा करते हैं। और दूसरे के लिए उपादान बनने की चेष्टा करना हिंसा है। महावीर कहते हैं, दूसरे के लिए उपादान बनने का प्रयत्न मत करिये। पदार्थ स्वतंत्र है और वे अपने कर्मों के अनुसार परिणामन करते हैं। आप अपने अधिकार क्षेत्र (Jurisdiction) से बाहर जाकर दूसरे के अधिकार क्षेत्र में प्रवेश मत करिये। पर, महावीर की बात हम सुनते कहाँ हैं? परिवार का मुखिया समझता है कि घर उस पर निर्भर है। वह घर को अपने सिर पर रख लेता है, अपनी इच्छाएँ और अपने विचार परिवार के सदस्यों पर थोपता है। पिता अपने पुत्र के लिए अध्ययन विषय तय करता है। उसे पिता की इच्छानुसार डाक्टर या इंजीनियर बनना पड़ता है। विवाह के संदर्भ में उसे उनकी पसन्द के सामने आत्मसमर्पण करना पड़ता है। पिता अपने पुत्र और उसके बाद की पीढ़ी के लिए सम्पत्ति को संचित करने में अपने आप को खपाता है। यहाँ मुखिया और पिता, अपने परिवार, अपने पुत्र तथा उसके बाद की पीढ़ी के लिए उपादान बनने के चक्कर में है और जैसा मैं कह चुका हूँ, दूसरे के लिए उपादान बनने का चक्कर ही हिंसा है। अधिक परिग्रह करने में हमारी नीयत दूसरों के लिए उपादान बनने की ही आती है। इसलिए अधिक परिग्रह भी हिंसा है। कहा जाता है कि परिग्रह तभी परिग्रह है जब हमारी मूर्च्छा उसमें हो। भाग्यवान हैं वे जो अधिक परिग्रह के बावजूद, मूर्च्छाप्रस्त नहीं होते-निर्लिप्त रह लेते हैं पर ऐसे भाग्यवान कहानियों में ही होते हैं। इसीलिए तो महावीर ने परिग्रह को राई-रत्ती छोड़ दिया था। भौतिक रूप से उसके छूट जाने से इस बात की संभावना बढ़ जाती है कि वह मन से भी छूट जाएगा। भौतिक रूप के वह रह जाये तो मन भी उससे संलग्न हो जाता है और यह हमस पैदा होती है कि मैं दूसरों के लिए उपादान बनूँ। इसलिये श्रावक को भी अनाप-शनाप परिग्रह से बचना चाहिये।

महावीर हमें दूसरों के लिए उपादान बनने से मना करते हैं। तो फिर एक के लिए दूसरे की भूमिका क्या सिर्फ दर्शक की है? दूसरे पदार्थों से हमारा कोई सरोकार नहीं है। हम सब अपनी स्वतंत्र धुरी पर घूम रहे हैं-अपने कर्मों के अनुसार परिणामन कर रहे हैं तो यह तो अलगाव है। महावीर क्या इस अलगाव का ही उपदेश देते हैं? नहीं, महावीर जैसे व्यक्ति

के चिन्तन की यह दिशा हो ही नहीं सकती। वे उक्त अलगाव के बावजूद संसार के पदार्थों के प्रति हमारे गहरे सरोकारों को रेखांकित करते हैं। उनका कहना है—दूसरों के लिए हम उपादान नहीं बन सकते, लेकिन निमित्त बन सकते हैं। अपने लिए उपादान और दूसरों के लिए निमित्त की भूमिका है हमारी। दोनों में से कोई भी भूमिका उपेक्षणीय नहीं है। महावीर द्वारा दिया गया यह सूक्ष्म जीवन-सूत्र ही नहीं स्थूल व्यवहार-सूत्र भी है। मेज बनाने में लकड़ी उपादान और बढ़ई निमित्त है। अच्छी मेज का बनना दोनों के द्वारा सही भूमिका निर्वाह पर निर्भर है। बढ़ई कितना ही सिर मारे खराब लकड़ी से अच्छी मेज नहीं बन सकती। इसी प्रकार अच्छी से अच्छी लकड़ी भी स्वतः मेज में नहीं बदल सकती। एक स्थिति यह भी हो सकती है कि बढ़ई खराब लकड़ी से ही अच्छी मेज बनाने के दम्भ का शिकार हो जाय। यह बढ़ई द्वारा दूसरे के लिए उपादान बनने की चेष्टा है। इससे झगड़ा खड़ा होता है। हम दूसरे को रास्ता दिखा सकते हैं, उसके लिए स्वयं चलकर उसे मंजिल पर नहीं पहुँचा सकते।

महावीर का विश्वास अपने लिए उपादान बनने की बात में ही अकेले होता तो वे ज्ञान प्राप्ति के उपरान्त शान्त बैठते। लोगों को अनथक उपदेश देते हुए नहीं घूमते। दर असल महावीर मात्र आत्मकेन्द्रित उपलब्धियों के समर्थक नहीं हैं। वे अपनी कमाई को दूसरों के साथ बाँटना चाहते हैं। इसीलिए अपने उद्देश्यों के द्वारा वे दूसरों के कल्याण के लिए निमित्त बने। दूसरों के लिए निमित्त की भूमिका का निर्वाह उन्होंने नहीं किया होता तो, तो क्षमा करें, शायद उन्हें मुक्ति की प्राप्ति भी नहीं होती। वे तीर्थंकर और भगवान नहीं बनते उन्हें शायद फिर जन्म लेना पड़ता।

एक ओर महावीर ने हमें दूसरों के लिए उपादान की भूमिका न देकर अहंकार से बचाया है तो दूसरी ओर हमें दूसरों के लिए निमित्त की भूमिका देकर हमें अपनी तुच्छता के बोध से भी बचाया है। एक दृष्टि से हम कुछ भी नहीं हैं लेकिन दूसरी दृष्टि से कुछ हैं भी। एक दृष्टि से हम अलग हैं, अपने कक्ष में सीमित हैं। लेकिन दूसरी दृष्टि से हम ओरों से जुड़े हुए भी हैं। हमारे कक्ष का दरवाजा दूसरे कक्षों में खुलता है। हम अकेले भी हैं और भीड़ के साथ भी हैं। भीड़ में रहते हुए भी हमारी निजता बनी हुई है। हमें पहचाना भी जा सकता है और भीड़ की सपाटत में भी हमारी यात्रा हो रही है। इस प्रकार महावीर हमें अहंकार और हीनता ग्रन्थि दोनों से बचाते हैं।

दूसरों के लिए उपादान बनने की चेष्टा न करके क्या हम दूसरों पर अहसान करते हैं? अहसान या दया का प्रश्न ही नहीं है। यह तो उनका प्राप्तव्य है जो हम उन्हें देते हैं। हम दूसरों की हिंसा नहीं करते तो दूसरों पर यह हमारी कृपा नहीं है। दया भाव या कृपा भाव से तो महावीर की यात्रा आरंभ ही नहीं हुई। यह तो दूसरों का अधिकार है कि हम उनके अधिकार क्षेत्र में प्रवेश न करें-उनकी हिंसा न करें, यह हमारा अधिकार है। यह तो पारस्परिक है। इसमें अहसान कैसा?

अच्छा हम दूसरों के लिए जो निमित्त बनते हैं वह तो उनके प्रति हमारी दया है न ? मैं आरंभ में कह चुका हूँ कि महावीर दया के स्तर पर हमसे कुछ नहीं चाहते। चाहेंगे ही क्यों ? दया दिखाने की हमारी हैसियत पर तो वे पहले ही प्रश्न-चिह्न लगा चुके हैं। हम होते कौन हैं दया दिखाने वाले ? अगर हम चीटी के विकास में निमित्त हैं तो क्या पता कल चीटी हमारे विकास में निमित्त बन जाय यह सब पारस्परिक है। महावीर के मन्तव्यों को परवर्ती आचार्य ने सूत्रित किया है—परस्पोरपग्रहो जीवानाम् (तत्त्वार्थसूत्रम् ५/२१)।

और, अगर हम निमित्त नहीं बनते तो हम अपनी आधी भूमिका के साथ अन्याय करते हैं। हमारी भूमिका अपने लिए उपादान और दूसरों के लिए निमित्त की है। इसलिए निमित्त न बनकर हम अपनी ही हानि करते हैं। कबीर के शब्दों में कहूँ तो इस धधधे में अपने खुद के धुलने के लिए स्वयं परिष्कृत होने के लिए, हमें पड़ना होगा।

हम निमित्त नहीं बने तो दूसरे का क्या बिगड़ेगा ? विशेष कुछ नहीं। हम निमित्त नहीं बनेंगे तो कोई और निमित्त बनेगा। उन्नति की सीढ़ियाँ चढ़ने के लिए संकल्पवद्ध उपादान सत्ता के निमित्त को, सहायक कारणों को, अनुकूल परिस्थिति को उसके समक्ष उपस्थित होना ही पड़ता है। गाँधीजी कहा करते थे, भारत को आजाद होना है, मैं निमित्त नहीं बनूँगा तो कोई और बनेगा।

अपने लिए उपादान और दूसरों के लिए निमित्त की इस भूमिका के सर्वोत्तम निर्वाह का उपाय क्या है ? आखिर हमारा व्यवहार, हमारी जीवनचर्या क्या हो कि हमारी यह दुहरी भूमिका सफलता के साथ निभ जाय, हम मुक्ति को पा सकें। महावीर कहते हैं—पहली आवश्यकता तो यही है कि हमें अपनी इस दुहरी भूमिका का सम्यक् बोध हो। और इस बोध तक हम तभी पहुँच सकते हैं जब हमें पदार्थ की विराटता, स्वतंत्रता और अनन्तधर्मिता का सचेत ज्ञान और तीव्र अनुभूति हो चुकी हो। यह तत्व का ज्ञान और उसकी सबल प्रतीति है। शास्त्रीय भाषा में इसे ही सम्यक् ज्ञान और सम्यक् दर्शन कहा गया है। सभाओं में इसका विवेचन करने और इस पर निबन्ध लिखने का अर्थ यह नहीं है कि विवेचक निबन्धकार सम्यक् ज्ञान और सम्यक् दर्शन से समृद्ध हो चुका है। विवेचन, विश्लेषण तो सही कार्य है। उक्त तत्व ज्ञान का आत्मा की अंतरंग गहराई में सहज स्वीकार आवश्यक है। यह हो जाय तो आगे का रास्ता खुद-ब-खुद खुल जाता है—यानी हमारा आचरण स्वतः सम्यक् ज्ञान और सम्यक् दर्शन की अनुरूपता में ढलने लगता है। अगर सम्यक् ज्ञान और सम्यक् दर्शन हमारे आचरण में नहीं उतरते तो समझना चाहिए कि उस ज्ञान और दर्शन के सम्यक् होने में कहीं कोई कसर है। पाँवों में ताकत आने पर व्यक्ति स्वयं चल उठेगा। अगर नहीं चलता तो मानना चाहिए कि पाँवों में आवश्यक ताकत अभी आई नहीं है। आचरण से रहित सम्यक् ज्ञान और सम्यक् दर्शन की

स्थिति हो ही नहीं सकती। प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के आचार्य उमा स्वामी ने दर्शन, ज्ञान और चारित्र्य इन तीनों के सम्यक् होने को एक ही सूत्र में कहा है सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः (तत्त्वार्थसूत्रम्-१/१)। आचरण के अभाव में तथाकथित सम्यक् ज्ञान का प्रदर्शन मात्र है। वह ढोंग है। सम्यक् ज्ञान होगा तो वह आचरण में झलकेगा ही, आचरण के साथ एकमेव होगा ही।

जैन धर्म केवल तत्वचर्चा का ही धर्म नहीं है। वह अकेले तत्व ज्ञान को मुक्ति के लिए पर्याप्त नहीं मानता। इसीलिये वह जीवन का धर्म है, शास्त्र और किताब का नहीं। असल में महावीर किताबी आदमी थे ही नहीं। उन्होंने अपने चिन्तन और साधना के द्वारा सत्य को उपलब्ध किया था, किताबों के द्वारा नहीं। इसलिए उनका ज्ञान अनिवार्यतः जीवन के साथ जुड़ा हुआ है। हमारे भीतर सम्यक् ज्ञान प्रकट होते ही वह अपने आप जीवन में उतर आता है जैसे पानी अपने आप ढाल की तरफ चल देता है। सम्यक् ज्ञानी को कहीं कुछ पूछना नहीं पड़ता। वह स्वयं प्रमाण बन जाता है। निर्मल आत्मा स्वयं प्रमाण होती है। इसीलिए महावीर का धर्म साधक का धर्म है, पिछलग्गू का नहीं। सम्यक् ज्ञानी सत्य को जानता है। वह उसे निर्मित नहीं करता, हम अज्ञानी जन सत्य को निर्मित करते हैं। कहूँ, उसे निर्मित करने का प्रयत्न करते हैं क्योंकि निर्मित तो हम उसे क्या करेंगे। और फिर उसके पक्ष में बहस करते हैं। इसलिये सब अपने अपने तथाकथित सत्य को लिए फिरते हैं और एक दूसरे को बहस के लिए ललकारते रहते हैं। सम्यक् ज्ञानियों में बहस का कोई मुद्दा ही नहीं रहता क्योंकि वहाँ सत्य एक होता है। श्रीमद्राजचन्द्र ने ठीक कहा है—“करोड़ ज्ञानियों का एक ही विकल्प होता है जबकि एक अज्ञानी के करोड़ विकल्प होते हैं।”

कभी-कभी हमें ऐसा लग सकता है कि व्यक्ति समझते-बूझते गलती कर रहा है। यहाँ दो सम्भावनाएँ हैं। एक तो यह कि जिसे हम समझना-बूझना कह रहे हैं, हो सकता है वह सम्यक् ज्ञान की अवस्था न हो। दूसरी यह कि जिसे हम गलती कह रहे हैं, हो सकता है वह गलती न हो। समझते-बूझते कोई व्यक्ति गलती नहीं करता। यदि वह करता है तो इसका अर्थ यही हो सकता है कि उसके अहंकार या मोह ने उसकी समझबूझ को आच्छादित कर लिया है। इसलिए काल के जिस क्षण में वह गलती पर है उसमें वह समझबूझ का धनी है ही नहीं।

कभी-कभी सम्यक् ज्ञानी के आचरण की नकल हो सकती है। ज्ञान तो सूक्ष्म है। उसका अनुकरण संभव नहीं। लेकिन आचरण अपनी स्थूल भौतिकता के कारण अनुकरण का विषय बन जाता है। हजारों लोग ज्ञानहीन आचरण लिए घूमते हैं। जैन धर्म जैसे केवल तत्व चर्चा का धर्म नहीं है वैसे ही वह केवल आचरण का धर्म भी नहीं है। आचरणहीन ज्ञान सम्यक् ज्ञान नहीं है तो ज्ञानहीन आचरण भी सम्यक् चारित्र्य नहीं है। अगर महावीर का ज्ञान हमारे पास नहीं है तो महावीर की तरह भौतिक आचरण करते हुए भी हम कहीं नहीं पहुँचेंगे। यही

कारण है कि जैन धर्म में बाह्य आडम्बरों और बाह्य विधि-विधानों का कभी स्वागत नहीं हुआ ।

महावीर का विश्वास सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य इन तीनों के एकत्व पर है । यदि वस्तुस्वरूप की समुचित समझ और जो कुछ हमने समझा है उस पर समुचित श्रद्धा हममें नहीं है तो हमारा आचरण एक मुखौटा मात्र है । अकेला ज्ञान मुखौटा है तो अकेला आचरण भी मुखौटा है, और मुखौटा सदैव दुःख का कारण बनता है । आज का सबसे बड़ा दुःख ही यह है कि हर वक्त हमें एक मुखौटा ओढ़ना है । जो हम हैं नहीं हमें प्रदर्शित होना है । हर वक्त एक तनाव में रहना है कि कहीं हम असली रूप में न दीख जाएं । सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य की त्रयी के बिना मुखौटों से छुटकारा पाना संभव नहीं है ।

सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य से युक्त व्यक्ति को महावीर कोई निर्देश नहीं देना चाहते । उनकी दृष्टि में वह तो स्वयं उनके समकक्ष है । उसे वे क्या बता सकते हैं? वह अपना पथ स्वयं बना चुका है । वह मोक्ष के मार्ग पर है । व्यक्ति सत्ता पर जितना अटूट विश्वास महावीर का है उतना शायद ही किसी महापुरुष का रहा हो । महावीर भाग्यवादी नहीं हैं । वे यह तो मानते हैं कि वस्तु अपने परिणामी स्वभाव के अनुसार स्वतः परिवर्तित होती है; किन्तु इस प्रक्रिया में वे वस्तु के निजी प्रयत्नों को निष्क्रिय नहीं मानते । वह तो अपने लिए स्वयं उपादान है उसकी लगाम स्वयं उसके हाथ में है । बन्धन और मोक्ष कहीं बाहर नहीं हैं । वे हमारे अपने भीतर हैं । हम जिसे भी चुनना चाहें चुन सकते हैं । बन्धन से मुक्त होना चाहें तो वह भी सर्वथा हमारे अपने हाथ की बात है । (बन्धनप मोक्खो तुज्झत्थेव-आचारांग-५/२/१५०) । महावीर के अनुसार वस्तु या व्यक्ति अपने उत्थान पतन के लिए किसी ईश्वर पर तो निर्भर है ही नहीं, वह चाहे तो अपनी कर्म निर्भरता भी मिटा सकता है । कर्म फलीभूत होते हैं । लेकिन यदि आत्मा जागृत है तो वे बिना फल दिए ही झर जाएंगे । इस प्रकार 'कर्म गति टाले नहीं टली' की अनिवार्यता से भी मनुष्य मुक्त हो सकता है । आत्मा जब चाहे तब अवनति से उन्नति या मुक्ति की दशा में सक्रिय हो सकती है । दिशा परिवर्तन में समय नहीं लगता । जैन सन्तों ने बड़े मार्मिक ढंग से महावीर की बात को समझाया है कि यदि हम दस मील तक गलत दिशा में चले जा रहे हैं तो सही दिशा के लिए हमें फिर दस मील नहीं चलना है । हमें सिर्फ पलटना भर है । हम पलटे नहीं कि सही दिशा मिल गई । किसी कमरे में दस साल से अंधेरा है । उसे प्रकाशित करने के लिए दस साल तक प्रकाश नहीं करना है । हमें दिया भर जलाना है । दिया जलते ही कमरा प्रकाशित हो उठेगा । हम दिये को जलाए तो? बड़ी से बड़ी यात्रा एक कदम से ही आरंभ होती है । हम एक कदम रखें तो? इसमें हमारा अपना हित है । जैन धर्म का हित है या नहीं, इसकी हमें ज्यादा चिन्ता नहीं होनी चाहिए ।

महावीर के उपदेश एक संपूर्ण रचना—एक सांगोपांग निर्मित हैं । जिसमें बहुत वैज्ञानिक ढंग से एक के बाद एक ईंट रखी गई

है । हम कहीं से भी एक ईंट अलग नहीं कर सकते, हम कहीं भी एक ईंट और नहीं जोड़ सकते । उनके उपदेशों में से किसी एक वाक्य या उपदेश को लेकर उसे ही सब कुछ मान लेना उनके साथ न्याय करना नहीं है । वस्तु स्वरूप की सही पहचान से उत्पन्न होने वाली महावीर की मूल अनेकान्त दृष्टि इस प्रकार के एकान्त आचरण की छूट हमें नहीं देती ।

विज्ञान की तेज गति का साथ न दे पाने के कारण आज की दुनिया में धीरे-धीरे बहुतसे आचार और विचार सरणियाँ अप्रासंगिक हो गई हैं । लेकिन महावीर के उपदेशों की प्रासंगिकता निरन्तर बढ़ती गई है क्योंकि उनके उपदेशों में धर्म और विज्ञान मिलकर एक हो गए हैं । पच्चीस सौ वर्ष पूर्व जिस वैज्ञानिक दृष्टि से उन्होंने अपनी बात कही थी उसे आत्मसात् करने के लिए विज्ञान के प्रयत्न अभी जारी हैं । दुनिया में विज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टि का ज्यों-ज्यों विकास होता जाएगा त्यों-त्यों महावीर के उपदेशों की प्रासंगिकता बढ़ती जाएगी ।

आज के संदर्भ बहुत जटिल हो गए हैं । बहुत सी बातों और कार्यों में परोक्षता आ गई है । दरअसल पिछले कुछ वर्षों से अर्थशास्त्र और भूगोल बहुत बदल गए हैं इसलिए सभी क्षेत्रों में प्रायः सभी प्रक्रियाएँ अनिवार्य रूप से बदली हैं । लेकिन इतना सब होने पर भी मनुष्य में कोई मौलिक अन्तर नहीं आया है । वह अब भी पहले की तरह ही राग द्वेष का पुतला है—अहंकारी, स्वार्थी और दूसरे के लिए सुई की नोंक के बराबर भी भूमि देने वाला 'भी पर नहीं ही' पर दृष्टि रखने वाला । इसलिए महावीर के उपदेश अब भी प्रासंगिक हैं । महावीर तो एक दृष्टि प्रदान करते हैं । वह दृष्टि है कि हमें दूसरे के लिए भी हाशिया छोड़ना चाहिए । हमारी ओर से यही आन्तरिक यत्न होना चाहिए कि दूसरे के लिए हाशिया छोड़ने की बात हमारी स्वानुभूति का विषय बन जाए । हम अनुभव करें कि हमारे अतिरिक्त भी पदार्थ सत्ताएं हैं—करोड़, सौ करोड़ नहीं, अनन्त और अनन्तधर्मी हैं, विराट, इतनी विराट कि उन्हें संपूर्णता में देख पाना असंभव है । यह स्वानुभूति, यह दृष्टि जिसके पास है वह अपने आप सत्य, अहिंसा, अचोर्थ, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य के रास्ते पर चलेगा । क्षमा, मृदुता, सरलता, पवित्रता, अकिंचनता आदि उसके सहज गुण बन जाएंगे । ये सब उस पर आरोपित नहीं होंगे । उसके विचार और उसकी स्वानुभूति से सहज ही उद्भूत हो उठेंगे । वह भीतर और बाहर एक ही जाएगा—विभक्त व्यक्तित्व का अभिशाप उसे नहीं झेलना होगा ।

आगामी वर्षों में बदलाव की गति और भी तेज होगी । सुविधाओं की वृद्धि के बावजूद सुख छोटा हो जाएगा । अधिक असत्य, अधिक हिंसा, अधिक चोरी, अधिक एकान्त दृष्टि, अधिक परिग्रह, अहंकार और असंयम, भय और उन्माद, अप्रत्यक्ष गुलामियाँ और विषमताएँ कुछ यह तस्वीर होगी कदाचित् भविष्य की । छोटी-छोटी बातों पर उलझाव, सूचनाओं की भीड़ के होने पर भी समझ या बोध की कमी, असहिष्णुता, हड़बड़ी यह सब बढ़ जाएगा । क्या तब भी महावीर के उपदेशों की प्रासंगिकता होगी? महावीर जो इस सबसे भिन्न और विपरीत जीवन जीते रहे क्या कल अप्रासंगिक नहीं हो जायेंगे । समय का अन्तराल एक चुनौती है लेकिन गहरे में सोचें तो पाएंगे कि महावीर की प्रासंगिकता कल भी घटेगी नहीं, बढ़ेगी ही । आज की अपेक्षा वे हमें कल अधिक याद आएंगे क्योंकि आज की अपेक्षा कल हमें उनकी अधिक आवश्यकता होगी □